लेखकाची प्रत.

तत्त्वज्ञानमंदिराच्या जानेवारी १९३० च्या अंकांत
प्रसिद्ध झालेला लेख

अद्वैत सिद्धान्त.

लेखकः—साधु शान्तिनाथ.

पुणें येथें आर्यभूषण छापखान्यांत छापिला

अद्वैत सिद्धान्त.

(लेखकः– साधु शान्तिनाथ)

भूमिका:–– परिदृश्यमान विश्वप्रपंचकी मूल तत्व स्वरूपतः कैसा है सो जानेकी अभिलाखा चिन्ताशील मनुष्योके लिये स्वाभाविक है। इस जिज्ञासाका फलरूपसे दार्शनिक विचार प्रगट होते है। तत्वका निरूपन बुद्ध्यधीन होनेसे बुद्धिभेदसे (वा रुचिभेदसे) किंवा दृष्टिभेदसे सिद्धान्त के भेद होते है। भारतीय दर्शनशास्त्रोमे तत्वविषयक जिन सब सिद्धान्त है उनको बहुत्ववाद, द्वैतवाद और अद्वैतवाद ऐसा नामसे अभिहित कर सकते। अद्वैतवादमेभी विशिष्ट और केवल ये दो भेद है। इस प्रबन्धमे केवालाद्वैतवादीयोका सिद्धान्त संक्षेपतः प्रदर्शित होगा। अद्वैत तत्व यदि प्रतिपादनकी लक्ष्य हो, तो यह प्रदर्शित होना आवश्यक है कि–विविध पदार्थोकी सत्ता स्वतन्त्र नही किन्तु परतन्त्र, अर्थात् अपर सत्ताका अधीन है। पदार्थसमूह सत्ता और भानके लिये जिसका आधीन है सो तत्व किसीका सापेक्ष नही किन्तु स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश है, ऐसा विवेचित होनेसे उक्त तत्वका अद्वैतत्व प्रतिपन्न होगा, क्योकि यो जिस सत्ताका अधीन है वह उक्त सत्ताका भेदक होता नही (यह प्रथम रीति); अथवा प्रथमतः स्वतःसिद्ध स्वप्रकाशतत्व प्रतिपादन करनेकी पश्चात् वह नित्य सर्वगत, सर्व पदार्थ उसका आधीन, ऐसा विचारित होनेसे उस तत्वका अद्वैतत्व प्रतिष्ठित होगा (यह द्वितीय रीती)। इसकी बाद यदि ऐसा प्रतिपादित हो कि–उस अद्वैतसत्तामे विभक्त प्रतिभास वास्तव नही है, तो केवलाद्वैत सिद्धान्त प्राप्त होगा। तात्पर्य यह है कि–उसीकाही सत्तासे सारे सत्तावान है उसीकाही प्रकाशसे विश्व प्रकाशित है; ऐसा निरूपित होनेसे उस अद्वैत सविशेषण वा (वास्तव) धर्म सहित होगा। अतः विशेषणरहित एकरसतत्त्व यदि प्रतिपादनीय हो, तो ऐसा विचार प्रकटित होना आवश्यक है कि–अशेष पदार्थ एकही सत्तासे सत्तावान, एकही भानसे भासित है अथच उस तत्वमे कोइभी पदार्थका वास्तव अस्तित्व नही है। अर्थात् केवलाद्वैत निरूपनके लिये ऐसा तत्व प्रदर्शित होना अवश्यक है कि यो स्वतः सिद्ध, जिसमे सर्व पदार्थ है अथच जिसमे वस्तुतः कुछभी नही, ऐसा तात्विक द्वैतरहित सत्वस्तुही अद्वैत है।

अभी अद्वैत प्रतिपादनकी औरभी दो रीति और इनसे उक्त रीतिका भेद कहा जाता है। पदार्थ द्विविध-ज्ञान और ज्ञेय। ज्ञानही ज्ञेयसम्बन्धसे ज्ञातारूपसे उपचारित होता है। इसमेसे ज्ञानको यदि मूल रूपसे विवेचन कीया जावे और उसको एक माना जावे तथा ज्ञेय उसका परिणामरूप अभिव्यक्तिरूपसे विचारित हो तो चेतनाद्वैत प्रतिपन्न होगा, और जडको (ज्ञेयको) यदि मूल रूपसे माना जावे और चेतन (ज्ञान) उसका परिणामरूप अभिव्यक्ति होवे तो जडाद्वैत सिद्ध होगा। परन्तु केवलाद्वैत वादीयोके इन दोनो मत सम्मत नही है। इस मतसे(केवलाद्वैतमतमे) जड, चेतनका परिणाम नही किंवा चेतन, जडका परिणाम नही है। जड, चेतनसे स्वतंत्र पदार्थ है—ये बात भी मान्य नही, चेतन और जड ये विरुद्ध स्वभाव होनेसेभी जड पदार्थ, सत्ता और भानकी लिये चेतनकी सापेक्ष है, चेतनका विषयरूपसे प्रतिभात जो दृश्यपदार्थ (जड) उनके सत्तास्फूर्ति, चेतनव्यतिरेकसे सिद्ध हो नही सकता। स्वतः सत्ता और स्फूर्तिका अभाव होनेसे जडका पृथक् सिद्धि होता नही। स्वतः सिद्ध होनेसे चेतन किसीका गुणभूत नही है, अतः वह जडका परिणामरूप नही है। साक्षीरूप होनेसे चेतनको विकार नही है, वह विकारी होवे तो विकारोके साक्षीत्व होना सम्भव नही है। अतः वह जडरूपसे परिणत भया ऐसा भी उक्तवादीयोके संमत नही। सुतरां केवालाद्वैत प्रतिपादनकी रीति यह है, कि जड पदार्थ चेतनसत्ताभानसे सत्तावान और भासित है, यह प्रदर्शन करना; पश्चात् जडकी मिथ्यात्व प्रगट करना। अर्थात् एक अखण्ड चेतनमे जड प्रपञ्चकी मिथ्यात्वनिश्चय पुरःसरही सद्रूप चेतनका आनन्त्य प्रतिपादित होता है। यद्यपि परिणामवादमे कारणैक्य सिद्ध होनेसे अद्वैतत्व प्रतिपन्न होता तथापि एकरस ब्रह्मात्मैक्य उक्त:रीतिसेही प्रतिष्ठित होता, नान्यथा। उल्लिखित दोरीतियोमेसे प्रथमरीति अनुसार अद्वैतत्व प्रतिपादनीय हो, तो जाग्रत अवस्था विवेचनपूर्वक यह प्रदर्शनीय है कि, अज्ञात और ज्ञात इन दोनो अवस्थामे बाह्य पदार्थ एकही प्रकाशसे प्रकाशित है, आन्तर ज्ञेय पदार्थभी वही प्रकाशसे प्रकाशित है,* वह प्रकाश सर्वत्र अनुस्यूत एक अखण्ड सत्स्वरूप है। स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाकी विचारद्वाराभी यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित होना चाहिये। पश्चात्, सर्वविध भेदवर्जित अखण्ड चित् वस्तुमे स्वरूपतः विद्यमानता, विवेकदृष्टीसे जिनके लिये असम्भव है, उन जड पदार्थोके अस्तित्व और प्रतीति कैसे सम्भव हो सके उसका युक्ति, चेतनका तरफसे प्रदान करना होगा। यह विचार विस्तार होगा समझकर द्वितीयरीति अनुसार निम्नलिखित संक्षिप्त विचार ग्रथित होता है। विस्तारविचार अन्यत्र प्रगट करनेका संकल्प है।

(भूमिका समाप्त)

ज्ञानका स्वप्रकाशत्व और ज्ञेयका अनिर्वचनीयत्व—यही केवलाद्वैतवादीयोका तत्वविषयक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त, युक्तितर्कद्वारा यथाकथंचित् प्रगट करनेकी

* यथार्थ ज्ञान (वृत्तिज्ञान) और ज्ञेयको तरह अयथार्थ ज्ञान और ज्ञेयभी उस प्रकाशसे प्रकाशित है.

लिये इस प्रबन्धका प्रारम्भ कीया जाता है । ऐसा कोइ पदार्थका अवलम्बसे विचारकी प्रारम्भ होना समुचित है जहांपर मतभेद नही है, अनुभवही ऐसा पदार्थ है । अनुभवका स्वीकार विना किसीकाभीं सिद्धि संभवनही[१] "मुझसे यह ज्ञात वा अनुभूत है" इस प्रकारसे अनुभव वा ज्ञानका प्रसिद्धि है। यह स्वतः वा परतः सो विवेचनीय है[२] । ज्ञानका स्वतःसिद्धि स्वप्रकाशत्व स्वीकृत न होनेसे कहना होगा कि, वह ज्ञात (अपरद्वारा प्रकाशित) होकर विषयोके साधक है अथवा अज्ञात (अप्रकाशित) होकर विषयोके सिद्धिप्रद होता है । अर्थात् स्वप्रकाश न होनेसे वह परतः प्रकाश वा अप्रकाश होगा, अज्ञात होकर ज्ञान स्वविषयोका साधक होता है, ऐसा कल्पना समीचीन मालुम नही पडता । ऐसा यदि होता तो ज्ञानके बारेमे प्रमाण न रहनेसे ज्ञानका स्वरूपसत्ताकाही सिद्धि होती न थी, अतः कैसे वह (ज्ञान) विषयोके सिद्धिप्रद होगा ? कोइभी पदार्थकी सत्ताका निश्चय होनेके लिये उसका प्रकाश होना आवश्यक है । ज्ञानका यदि प्रकाश न रहे तो वह "है" ऐसा निश्चय हो नही सकेगा । प्रकाश न रहनेसेभी यदि सत्तानिश्चय होगा तो असत्ताकाभी निश्चय क्यौं न हो ? अतः ज्ञानके सत्ताका निश्चय होनेके लिये वह अप्रकाश होना उचित नही । स्वयं अप्रकाशमान अथच विषयोको प्रकाश करता है, ऐसा दृष्ट नही होता । स्वयं असिद्ध होकर कैसे अपरके साधक होगा ? यदि ज्ञान प्रकाशित न होवे तो स्वतः अप्रकाशमान विषयकाभी प्रकाश होगा नही । विषय

---

(1) We must understand what knowing is in order to explain anything at all, so that any proposed explanation of knowing would necessarily presuppose that we understood what knowing is. (Prichard's "Kant's Theory of knowledge.")

(२) अनुभव सर्व सम्मत होनेसेभी उसका स्वरूपविषयमे मतभेद है। इसी हेतुसे वह विचार्य होता है। यो सर्वथा प्रसिद्ध अथच निःसन्दिग्ध किंवा जो नितान्त अप्रसिद्ध उसमे विचारप्रवृत्त हो नही सकता । अनुभवविषयक मतभेद यथा—ज्ञान, वेद्य और अस्वप्रकाश है (न्यायवैशेषिक); ज्ञान अस्वप्रकाश नही वा अपरद्वारज्ञेयभी नही, किंतु वह स्वप्रकाश है, स्वप्रकाश अर्थ अपनेही अपना विषय (अपनेकोही अपना व्यवहारहेतुत्व होनेसे साक्षीरूप अनुभव सिद्ध होता नही), ज्ञान क्षणिक अतः आदिमान है (बौद्ध), ज्ञान स्वप्रकाश, अपना और परका प्रकाशक, आत्माश्रित जन्मादि वान है (प्रभाकर मीमांसक); ज्ञान स्वप्रकाश अथ च जन्मादिमान नहीं, वह सधर्मक, उसमे वेद्यधर्म है (जैन); ज्ञान स्वप्रकाश, उसमे वेद्यधर्म नही है अथ च वह परिच्छिन्न है (सांख्यपातञ्जल.) परवर्ती विचारकी पूर्वपक्षरूप कतिपय मतोके उल्लेख कीया गया । अद्वैतसिद्धान्तानुसार ज्ञानवेद्य वा अस्वप्रकाश नही किंतु स्वप्रकाश अर्थात् अवेद्य अथ च अपरोक्षव्यवहार योग्य है, स्वप्रकाश अर्थ अपनेही अपनेका विषय ऐसा नही किन्तु स्वतःही प्रकाश, प्रकाश्य नही ऐसा अर्थ है । स्वप्रकाशज्ञान क्षणिक वा आदिमान नही किन्तु अनादि है । ज्ञाननिराश्रय जन्मरहित, वह धर्मरहित, परिच्छेद रहित है ।

और ज्ञान इन दोनोका अप्रकाश होनेसे जगत्काही अप्रसिद्धि हो जाती थी। अतः ज्ञान अज्ञात होकर विषयोके साधक होता है यह पक्ष संगत नही है।

ज्ञान, ज्ञात होकर अर्थात् अपरद्वारा प्रकाशित होकर, विषयोके साधक होता है ऐसा कल्पनाभी समञ्जस नही है। इस पक्षमे प्रथम ज्ञानके तरह ज्ञानका प्रकाशक द्वितीय ज्ञानभी ज्ञात होकरही स्वविषयोके सिद्धिप्रद होता है ऐसा मानना होगा और द्वितीय ज्ञानका प्रकाशके लिये तृतीयज्ञान अन्वेषण करना होगा। उस तृतीयज्ञानकोभी ज्ञातही कहना होगा क्योंकी ज्ञातही विषयसाधनमे सक्षम होता है, ऐसा कहा जा रहा है। उसका साधक चतुर्थज्ञान अपेक्षित होगा, वभी ज्ञातही होगा। इस रीतिसे पूर्व पूर्व ज्ञान पर पर ज्ञानका सापेक्ष होनेसे ज्ञानधारा अविराम चलते रहेंगी। ज्ञानधाराकी विराम न होनेसे अनवस्थिति होगी[३] अतः ज्ञान, ज्ञात होकर विषयोके साधक होता है ऐसा स्वीकार करना संगत नही। उल्लिखित विचारसे यही अर्थ प्राप्त भया कि—ज्ञानका प्रकाशरूपता न होनेसे जडत्वप्राप्ति वा असत्वप्राप्तिरूप दोष होगा और उसका परप्रकाश्यत्व होनेसे अनवस्था दोष होगा। अनवस्था होनेसे मूलभूत प्रथम ज्ञानकाही असिद्धि होगा। ऐसा होनेसे उसका विषयकाभी सिद्धि होगा नही, इसीसे जगतका अप्रसिद्धि हो जाती है। अतः ज्ञान अज्ञात वा ज्ञात होकर विषयोके साधक होता नही, अथच ज्ञानद्वारा पदार्थोके सिद्धि होती है। अवशेष मानना पडेगा कि ज्ञानकी स्वरूपसिद्धि और प्रतीतिसिद्धि स्वयं ही होती है। असिद्ध और परतः सिद्ध न होनेसे (प्रकारान्तरकी अभावके कारण) ज्ञान स्वतः सिद्ध स्वप्रकाश है। अपना प्रकाशमे अन्य प्रकाशका अपेक्षारहित यो सर्वका प्रकाशक वही स्वप्रकाश कहलाता है। स्व प्रकाश होनेसे वह अप्रकाशित नही। यो अप्रकाशित रह सकै उसको स्व प्रकाश कहा नही जा सकता। वह प्रकाश्य भी नही। उसका ग्राहकान्तर न रहनेसे वह अविषय है। अविषय होनेसे प्रकाशान्तरकी अपेक्षा नही है, अतः अनवस्था नही होती[४]।

इस विषयमे औरभी कहना है—अनुभूति वर्तमान होकर घटादिके तरह अप्रकाश दृष्ट होता नही। ऐसा होनेसेही उसका प्रकाश अपरकी अधीन है ऐसा माना जाता था। घटादिके तरह यदि ज्ञान ज्ञानान्तरका विषय होता तो वह विषयरूपसेही भासित होता था, विषयीरूपसे कभी भासित नही होता। अथ च

---

(३) प्रागुलोपाविनिगम्यत्वं प्रमाणापगमैर्भवेत्। अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्सस्य त्रिदोषता। (खण्डन-खण्ड-खाद्य.)

(४) अनवस्थाज्ञप्तौ वा उत्पत्तौ वा ? नाद्यः ज्ञप्त्यन्तरानभ्युपगमात्। नोत्पत्तौ, विना-ज्ञानं उत्पत्तेः व्यभिचारात्। (श्री रघुनाथकृत खण्डन मणिभूषा :- अमुद्रित)

ज्ञान-विषयीरूपसे भासित होता है। अतः विषयसे विलक्षणता होनेसे ज्ञानका अविषयत्वही मानना चाहिए। ज्ञान और विषय सजातीय नही, वे विजातीय है। परन्तु ज्ञान ज्ञानका विजातीय नही। विजातीयोकेही विषयविषयीभाव दृष्ट होता है। अतः ज्ञान ज्ञानान्तरका विषय नही है। अनुभाव्य पदार्थ अननुभूतिरूप होता है—ऐसा व्याप्ति होनेसे, यो अनुभव, अनुभाव्य नही, उसमे अनुभाव्य पदार्थोके तरह अस्वप्रकाशत्वका सम्भावना कीया नही जा सकता। अतः उस अनुभवका अस्वप्रकाशत्व अनुमानगम्यभी नही है। परिशेषतः अनुभूति वा ज्ञान स्वतः प्रकाश है।

औरभी—ज्ञान यदि अपरज्ञानसे ज्ञेय होगा तो ज्ञानधाराका विराम होगा नही, सो कहा गया। ऐसा ज्ञानधारा अनुभवसिद्धभी नही। इस प्रकार यदि ज्ञानधारा चलते रहे तो विषयान्तर-ज्ञानका अवसर होगा नही, बाह्यव्यवहार लुप्त होगा, समस्त जीवनव्यापी कालभी एक ज्ञानके लिये पर्याप्त होगा नही। ज्ञानधाराकी सन्तति होनेसे विषयज्ञानका पश्चात् उक्त ज्ञानका ज्ञान पुनः शेषोक्त ज्ञानका ज्ञान इस प्रकार चलते रहेगा। इससे विषयावगाही ज्ञानका अभाव होगा नही, सुतरां सुषुप्ति मूर्च्छाभी हो नही सकेगा। उक्त ज्ञानविषयक ज्ञानका धारा यदि विराम प्राप्त हो तो उस अन्तिमज्ञान स्वप्रकाश न होनेसे (मान्य न होनेसे) उसमे संशय होगा अथवा उसका असिद्धि होगा। उक्त ज्ञानका बारेमे संशय हो जानेसे निचेके (निम्नमुखी) सर्व ज्ञान संशयरूप हो जावेगा, क्योकी विषयीविषयक संशय होनेसे विषयविषयक संशय होता है। अथ च ऐसा संशय उपलब्ध नही होता। और यदि उक्त अन्तिमज्ञान असिद्ध होगा तो उस ज्ञानसे लेकर विषयतक सारे असिद्ध हो जावेगे[५] उक्त उभय दोषकी निवारणके लिये यदि अन्तिम ज्ञानको स्वप्रकाश माना जावे तो ज्ञानका स्वप्रकाशत्व सिद्ध होगा। स्वविषयक ज्ञानान्तर न रहनेसे भी निरपेक्ष अन्तिम ज्ञान जैसा स्वतः प्रकाशमान और अपरका सिद्धप्रद है ऐसा प्रथम ज्ञानभी स्वतः सिद्ध और विषयप्रकाशमे अपरका अपेक्षारहित है। अतः लाघवतः प्रथम ज्ञानकोही स्वप्रकाश मानना उचित है[६] ज्ञान यदि अस्वप्रकाश

---

(५) उत्तरासिद्ध्या पूर्वासिद्धौ विषयसिद्धिपर्यन्तं व्यसनमापद्येत। (खंडनखंड खाद्य टीका अमुद्रित–अज्ञातनामा लेखककृत)

(६) (क) यद्यनुव्यवसायाः प्रोच्यन्ते तदा अनवस्था विषयान्तरसञ्चाराभावः अननुभवश्च तद्विरामे विषयपर्यन्तं संशय इत्यगत्याज्ञानं स्वप्रकाशमेषितव्यं।

(खण्डनखण्डखाद्य शांकरी टीका)

(ख) ज्ञानान्तरवेद्यत्वे ज्ञानस्य ज्ञानान्तरेण कः सम्बधः? न तावत् संयोगः अद्रव्यत्वात्, नापि समवायः आत्मगुणयोरन्योन्यं तदयोगात्, नापि तादात्म्यं भिन्नयोरभिन्नयोर्वा तादात्म्यायोगात्, नापि विषयविषयीभावः तस्य द्रव्याद्यन्तर्भावानन्तरभावाभ्याम्, असंम्भवात् न चासम्बद्धमेव ज्ञानं ज्ञानान्तरज्ञेयम् अतिप्रसंगात्।

(खण्डनखण्डखाद्यविद्यासागरी टीका)

होता तो जिज्ञासु पुरुषके ज्ञान रहते हुये भी ज्ञानका अभावविषयक ज्ञान वा ज्ञान-विषयक संशय होता था। परन्तु ऐसा होता नही। अतः अवगत हुवा जाता कि ज्ञान अप्रकाशरूप नही किन्तु स्वयं प्रकाशरूप है[६]

औरभी व्यक्तव्यः— उल्लिखित विचारद्वारा यह सिद्ध हुवा कि ज्ञान, ज्ञानान्तर-द्वारा ज्ञेय नही अन्यथा अनवस्थादि दोष होगा। स्वसत्तामे प्रकाशमान होनेसे ज्ञानान्तरका अपेक्षा, ज्ञानको नही है। ज्ञान स्वज्ञेयभी नही क्योंकी स्वयंही विषय और स्वयंही विषयी ऐसा होना विरुद्ध है[७] ज्ञान अज्ञेयभी (अभासमान) नही, क्यौकी वह स्वतः सर्व जीवका अनुभवसिद्ध है। असंदिग्ध होनेसे वह अनुमेयभी नही। परिशेषतः ज्ञान स्वप्रकाश है। ज्ञेय नही अथच भासमान, वही स्वप्रकाश कहलाता। ज्ञान अपना वा परका विषय न होकर भी अपरोक्ष व्यवहारका हेतु होता है। अपर वस्तु-अपेक्षा ज्ञानका स्वभावभेद होनेसे ज्ञानविषयक ज्ञान न होकर भी ज्ञानविषयक व्यवहार (जानामि भाति इत्यादि) होता है। ज्ञान—व्यवहारमे तदभिन्न प्रकाशही हेतु है तद्विषयक हेतु नहीं। ज्ञानव्यवहारविषयमे ज्ञानही व्यवहर्तव्य और प्रकाश है. अतः उसका विषयत्व प्रयोजन नही है।

अभी उक्त सिद्धान्तका विरोधी पूर्वपक्षका यथाकथञ्चित परिचय और संक्षिप्त खण्डन प्रदान कीया जाता है।

पूर्वपक्ष–(१) ज्ञान अवश्य वेद्य है ऐसा यदि माना जावें तो अनवस्था दोष होताथा। ज्ञानका अवश्यज्ञेयत्व अंगीकृत न होनेसे उक्त दोष नही है। (न्यायवैशेषिक)

(२) ज्ञान स्वयंही विषय और स्वयंही विषयी है। अतः ज्ञानका प्रकाशके लिये अपर आवश्यक नही सुतरां अनवस्था नही। (प्रभाकरमीसांसक)

संक्षिप्त खण्डनः–(१) अनवस्था निवृत्तिके लिये पूर्वपक्षीयोको ऐसा कहना होगा कि एक ज्ञान ऐसा है यो अपरको सिद्ध करता है अथच स्वयं वह अपर ज्ञानका अविषय है। इस प्रकारसे जो ज्ञान ज्ञात न होगा उसका सत्व होगा नही, क्योकी उस विषयमे प्रमाण नही है। जिज्ञासा होनेसे वहभी ज्ञात होगा ऐसा पूर्वपक्षी का वचन संगत नही, क्योकी अज्ञातगोचर जिज्ञासा हो

(६) निश्चिनोत्येव 'इदमहमद्राक्षम्' इति। तेन प्रकाशमानैवानुभूतिरर्थैः व्यवहारं जनयतीति युक्तं। (चित्सुखी)

(७) विषयविषयिभावस्य संबन्धत्वेन भेदनियततया स्वस्मिन् स्ववेद्यत्वस्य विरुद्धत्वात्। (अद्वैतसिद्धि)

नही सकती। जिज्ञासाके लिये उस ज्ञान सामान्यरूपसे ज्ञात होना आवश्यक है. अतः पूर्वोक्त अनवस्था। औरभी वक्तव्य–जिज्ञासित ज्ञान (व्यवसाय) यदि ग्राह्य होगा तो अन्योन्याश्रय दोष होगा, क्योकी अज्ञातमे जिज्ञासा होती नही। जिज्ञासाके लिये ज्ञानका ज्ञान मानना होगा पश्चात जिज्ञासा होगा तथा जिज्ञासा होनेसे ज्ञानका ज्ञान होगा अर्थात् जिज्ञासित (ज्ञानको जाननेकी जो इच्छा उसका विषयभूत) ज्ञानही ग्राह्य रहता, और ज्ञान जिज्ञासित होनेके लिये ज्ञानका ग्राह्यता आवश्यक है इसरीतिसे अन्योन्याश्रय है। अर्थात् ग्राह्यतासे जिज्ञासा और जिज्ञासासे ग्राह्यता अतः अन्योन्याश्रय दोष होगा, सुतराम् उक्त पक्ष समीचीन नही.

(२) अभी द्वितीय पक्षका खण्डन कीया जाता है। आपनही अपना वेद्य होनेसे जो कर्म वही कर्ता होगा। परंतु कर्ता और कर्म एक हो नही सकते। क्रियाके प्रति कर्ता गुणभूत होता, कर्म प्रधान होता। युगपत् एक क्रियाके प्रति एकका गुणप्रधानभाव होना संभव नही। कर्तृत्व कर्मत्व विरुद्ध धर्म है। विरुद्ध धर्मोके एकत्र समावेश सम्भव नही है। सम्पूर्ण अभेदमे विषयविषयीभाव सम्बन्ध होता नही। अभेद सम्बन्ध नही, सम्बन्ध भेदगर्भित होता है। अभेद यदि सम्बन्ध होता तो रूपमे रूपवैशिष्ट्य प्रत्ययभी होता था। एकका अंशभेदसे ग्राह्यग्राहक भाव होगा, ऐसा कहना उचित नही। ग्राहकांशका ग्राह्यत्व होनेसे पुनः अंशान्तर कल्पना करना होगा। इस रीतिसे अनवस्था होगा,[९] स्वयं प्रकाशत्वहोनेसे वही चेतनप्रकाश होगा, इतरांश जड होगा। अतः स्वप्रकाशका अपनेमेही विषयविषयीभाव हो नही सकता।[१०] यो विषय वह सापेक्ष जड है वह प्रकाशका स्वरूपभूत होना संभव नही।[११] अतः स्वप्रकाश अर्थ स्वविषय नही किन्तु प्रकाशान्तरके सम्बन्ध विना प्रकाशमान अथवा स्वव्यवहारमे स्वातिरिक्त ज्ञानान्तरका अनपेक्ष है। यहांपर एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण कीया जाता। जैसा आलोक (तेज वा प्रकाश) वह आलोकाविरुद्ध विषयोके चाक्षुषज्ञानमात्रमे आलोकरूपसे कारण होता है (अपनेमे और विषयमे), स्वव्यतिरिक्त

---

(९) ग्राहकस्य ग्राह्यत्वे अनवस्थानात्। (आनन्दपूर्णविद्यासागरविरचित-न्यायकल्पलतिका बृहदारण्यकभाष्यवार्तिकटीका--अमुद्रित)

(१०) नहि एकस्यैव निरंश्य कर्तृत्वं कर्मत्वञ्च गुणत्वेन प्रधानत्वेन सिद्धत्वेन साध्यत्वेन च सापेक्षत्वेन निपेक्षत्वेन सर्वात्मना समत्वेन च अवस्थानं युक्तं (उपदेशसाहस्रीगूढार्थ दीपिका--अमुद्रित)

(11) If, however, the absolute is to appear to itself, it must on its objective side be dependent on something foreign. But this dependence does not belong to the absolute itself but merely to its appearance.

(Schelling's works)

स्वाविरुद्ध विषयोंके चाक्षुषज्ञानमे केवल आलोकरूपसे नही किन्तु विषयसम्बन्धी आलोकरूपसे कारण होता (केवल विषयमे), स्वविषयक ज्ञानमे स्वाभेदरूपसे कारण होता (केवल अपनेमे); ऐसा, व्यवहर्तव्यका जो ज्ञान सो व्यवहारमात्रमे प्रकाशत्वरूपसे कारण (ज्ञान और विषय इन दोनेमे), स्वातिरिक्त-विषयक व्यवहारमे तद्विषयक प्रकाशरूपसे (केवल विषयमे), और स्वव्यवहारमे स्वाभिन्न प्रकाशरूपसे कारण होता । अतः विषयत्वप्रयुक्त ज्ञानका प्रकाशत्व होता नहि परन्तु ज्ञानस्वरूप–विशेष–प्रयुक्त प्रकाशत्व होता है । ज्ञान, अपना अविषय अपना स्वरूपमे व्यवहारका प्रवर्तक होता है । ज्ञानका सजातीय अपरकी अपेक्षा न करते हुये (ज्ञानसजातीय–अपरानपेक्ष) व्यवहार–गोचर होनेसे तथा अपरमे व्यवहार–हेतु होनसे ज्ञान स्वतःसिद्ध है। अविषय होकरभी प्रकाशमान होनेसे ज्ञानका बारेमे संशय होता नही ।

स्वयं प्रकाश, स्वयं प्रकाशविषयक अनुमानका गोचर होनेसेभी उसका स्वयं-प्रकाशत्व व्याहत होता नही । प्रमाणका विषय होनेसेही उसका दृश्यता होगा ऐसा नही, दृश्यता उसीकाही होता है जो स्वातिरिक्त ज्ञानका नियमसे सापेक्ष होता परंतु ज्ञान ऐसा नही है[१२] अथवा शशविषाण अविषय होनेसेभी उसभे जैसा प्रमाण-द्वारा विषयत्वका निषेध किया जाता है ऐसा अविषयज्ञानमेंभी प्रमाणद्वारा स्वातिरिक्त ज्ञानका अपेक्षा निवारित होता है; अतः उक्तप्रमाण, ज्ञानका स्वप्रकाशत्व प्रतिपादनमे साधक होता है ।

स्वप्रकाशत्व सिद्ध होनेका पश्चात् अभी ज्ञानका नित्यत्व विषयमे विवेचन कीया जाता है । जिसका प्रागभाव (प्राक्कालीन अभाव) है उसका उत्पत्ति है और वह आदिमान है । जिसका प्रागभाव नही उसका उत्पत्ति नही, वह अनादि है । अभाव विना जन्मादि सिद्ध होता नही । प्रागभाव अज्ञात होनेसे जन्मनिश्चय हो नही सकता । ज्ञानका प्रागभाव वा ध्वंस-सिद्ध नही हो सकता । स्वप्रागभावकालमे और स्वध्वंसकालमें स्वयं ज्ञानरूप ग्रहीताही नही । और स्वअस्तित्व कालमे ग्राह्यभूत स्वाभाव (प्रागभाव और ध्वंस) नही है । अतः घटपटादि उत्पत्तिशील पदार्थोंके अभाव जैसा संवितसाक्षीक है, ऐसा ज्ञानका अभाव संवितसाक्षीक वा अनुभवसिद्ध हो नही सकता । स्वयंप्रकाश–स्फुरण, स्फुरणान्तरका अगोचर होनेसे अन्यद्वारा उसका प्रागभाव वा ध्वंस गृहीत नही हो सकता । अतः ग्रहीता असंभव होनेसे

क (१२) न तावत् व्याघातः अनुमानगोचरस्य तद्गोचरत्वाप्रसाधनात् । न च प्रमाण-विषयत्वमात्रेण दृश्यता, साहिस्वातिरेकि संविदपेक्षानियतिः, न सा आत्मनो अस्ति सुषुप्ते अपि सिद्धेः (ब्रह्मसूत्रभाष्यप्रकटार्थ—अमुद्रित)

ख निधर्मकेऽपि न विषयत्वादि धर्मविरोधोऽपि काल्पनिकधर्मानामभ्युपगमात् (तत्त्वदर्पण-अमुद्रित)

ग्रहीतृसापेक्ष प्रमाणका असंचार होगा, सुतराम् ज्ञानका प्रागभाव और ध्वंस सिद्ध होगा नही। अतः स्वतः सिद्ध स्वप्रकाशका प्रागभावादि स्वतः वा अन्यतः सिद्ध न होनेसे वह नित्य है।[१३] ज्ञान स्वप्रकाश होनेसे रूपरसादिके तरह किसीकाभी गुणभूत (सापेक्ष धर्मरूप) होगा नही, गुणभूत न होनेसे वह निराश्रय और अवधिभूत होगा। वह अनित्य हो नही सकता। अनित्य पदार्थ सापेक्ष सावधिक होता है। अवधिका ग्रहण विना अनित्यत्वका निरूपण कीया नही जाता। निरवधि स्वप्रकाश–स्वरूप, सापेक्ष न होनेसे, अनित्य नही। निराश्रय होनेसेभी स्वप्रकाशका, कारणा-श्रितत्वरूप कार्यत्व (अनित्यत्व) हो नही सकता। निरवधिक नाशको प्रसिद्धि हो नही सकनेसे सर्वावधिभूत प्रकाशका नाश निरूपण कीया नही जा सकता। जो स्वयंप्रकाश वह आगन्तुक प्रमाणकी सापेक्ष होगा नही। अतः तद्विषयक प्रमाणाभावसे उसका अनवभास होगा, ऐसा नही। जो कुछ उत्पत्ति विनाशशील उसका उत्पत्ति विनाशशीलता जाननेकी लियेभी उत्पत्तिक्षण,विनाशक्षण और स्थिति क्षणके एकमात्र अविकृत साक्षिस्वरूप चेतनका अस्तित्व आवश्यक है। काल और कालिक विकारोके साक्षिरूपसे सर्वविध विकार रहित और कालिक परिच्छेदशून्य चेतन न रहनेसे, काल और तत्कृत विकारादिके ज्ञानही सम्भव होता नही।[१४]

उक्त स्वप्रकाश ज्ञानका तरफसे ज्ञेयके प्रति कल्पनानेत्रसे देखनेसे दो प्रकार पदार्थ प्रतिपन्न होगा–द्रष्टा और दृश्य। द्रष्टृचेतन ज्ञानात्मक, दृश्य पदार्थ ज्ञेयात्मक जड पदवाच्य है। जडका अवभासक होनेसे ज्ञप्ति वा ज्ञानही ज्ञातृ वा द्रष्टरूपसे अभिहित होता है। स्वप्रकाश ज्ञानात्मक द्रष्टृचेतनसे ज्ञेयात्मक जड प्रपञ्च–भिन्न वा अभिन्न वा भिन्नाभिन्नरूपसे निरूपणार्ह नही है–यह अभी प्रतिपादन करना है।

ज्ञेयपदार्थ, ज्ञानसे स्वतंत्र रूपसे गृहीत वा प्रतीत न होनेसे उसको ज्ञान–असम्बद्ध वा स्वतंत्र भिन्न कहा नही जा सकता। जिनके स्वरूप परस्पर असंसृष्ट, जो पदार्थ असम्बद्ध उनको द्रष्टृदृश्यभाव कैसा? ज्ञेय पदार्थ, ज्ञानस्वरूपसे

---

(१३) अनित्यज्ञान=ज्ञेयात्मक वृत्तिज्ञान+स्वप्रकाशज्ञान। नित्यज्ञानका प्रतिपादनके पश्चात् अनित्यज्ञान माननेकी उपपत्ति देना इस प्रबन्धकी उद्देश नही है। अनित्यज्ञानका तरफसे विचार करते करते उस परिणाम और विभिन्नताके सिद्धिप्रद नित्यसाक्षी ज्ञान कैसा प्रतिपन्न होता सोभी विस्तारभयसे प्रदर्शित नही भया। इसी हेतुसेही जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति विचारद्वारा साक्षी विवेक दर्शित नही भया।

(14) The relation of events to each other as in time implies their equal presence to a subject which is not in time. There could be no such thing as time if there were not a self-consciousness which is not in time.

(Green's "Prolegomena to Ethics")

सर्वथा भिन्न होनेसे ज्ञातृज्ञेयभावकी अप्रासिद्धि होनेका कारण जगत्कीही अप्रासिद्धि हो जायेगी। अतः स्वप्रकाश ज्ञानसे भिन्नरुपसे ज्ञेयपदार्थके निर्वचन हो नही सकता। ज्ञान और ज्ञेयके स्वरूपभेद होनेसेभी ज्ञेयका स्वतः सत्तास्फुर्ति सम्भव न होनेसे ज्ञानसे उसका भेद सिद्ध होता नही। [15]यद्यपि द्रष्टृचेतन और दृश्यका भेद प्रसिद्ध है, इसी हेतुसेही व्यवहार होता है, तथापि उस भेदका मूल दृष्ट होता नही। दृक् दृश्यके भेददृष्टि सम्भव नही क्योकी दृशि अदृश्य (अविषय) है। अदृष्टसे (अदृष्ट अपेक्षा) अदृष्टका भेद किंवा दृष्टसे अदृष्टका भेद, दृष्ट नही हो सकता, क्योकी भेद दृष्टि, धर्मि (जिसमे भेद वा अभाव रहता उसका) और प्रतियोगीका (जिसका भेद वा अभाव उसका) सापेक्ष होता है। जो अदृष्ट वह कभीभी धर्मी वा प्रतियोगी हो नही सकता, नही तो सबका वा सबसे, युगपत् भेद दृष्टि हो जावेगी। अर्थात् अदृष्ट यदि धर्मि होगा तो सबका भेददृष्टि हो जावेगी, अदृष्ट यदि प्रतियोगी होय तो सर्वतः भेददृष्टि हो जाती थी; ऐसा होनेसे संशय विपर्ययकेभी अनुदय होता था अर्थात् यह इसवस्तु अपेक्ष भिन्न वा नही इत्याकार संशय किंवा भेदाभावनिश्चय भी होता नही था। अतः दृष्टद्वयकेही परस्परापेक्षासे भेददृष्टि संभव, द्रष्ट और अदृष्ट इन दोनोका किंवा अदृष्ट द्वयके भेददृष्टि सम्भव नही। अतः दृक्दृश्यके भेदप्रासिद्धिका कोई मूल समझे नही जाता। इसी हेतुसे दृक्दृश्यके भेद दृष्ट हो नही सकते। दृक् दृश्यके अन्योन्याभाव अवगत होना शक्य नही, क्योकी दृक् स्वयं दृशिस्वरूप है। ईदृश स्वयंदृष्टिका, प्रतियोगीसापेक्ष दृष्टयन्तर–दृश्य रूपान्तर (अर्थात् जो-रूपान्तर, प्रतियोगीका अपेक्षा करता और अन्यज्ञान द्वारा ज्ञेय होता ऐसा रूपान्तर) रह नही सकता, अन्यथा स्वयंदृष्टत्वका हानि होगा। जो स्वसत्तामे प्रकाशव्यभि-चारी उसकाही अदृशिता निश्चय कीया जा सकता। परन्तु दृशि सदादृष्ट (स्वप्र-काश) होनेसे उसका स्वसत्तामे प्रकाशव्यभिचार नही है। स्वयंदृष्टिका कभीभी अदृष्टि सम्भव नही क्योकी उसका स्वरूपभूत दृष्टि अन्यानपेक्ष है। वह यदि अन्या-पेक्ष होगा तो स्वरूपकाही अन्यापेक्षत्व होनेसे अनित्यत्व हो जावेगा।

उक्त रीतिसे दृक्स्वभावकी पर्यालोचनद्वारा भेद और अभावके सम्बन्ध उसमे निरास करके अभी भेद और अभावके स्वरूप पर्यालोचन द्वाराभी उनके दृक्धर्मत्व निराकृत होता है। यहांपर दो विकल्प उत्थापित कीये जाते है–भेद और अभाव, ये दृश्य है वा अदृश्य है ? यदि दृश्य होय तो दृश्यान्तरकी तरह वे दृक्धर्म होगा नही। वे यदि अदृश्य होय तो उनको अप्रकाश वा स्वप्रकाश कहना होगा।

(१५) स्वतश्चसत्तास्फूर्त्योरभावात् न पृथक् सिद्धिः।

(विद्यासुरभि–अमुद्रित)

अप्रकाश होनेसे उनके सिद्धि होगा नही । वे यदि स्वयंप्रकाश होय तो दृशिसे उनके भेद रहेगा नही । इस पक्षमे ओरभी दोष है कि–स्वयंप्रकाश होनेसे सदाभान होगा । सदाभान होनेसे उनके सिद्धि प्रतियोगी–अनपेक्ष होगा । प्रतियोगी–अनपेक्ष सिद्धि होनेसे भेदका और अभावत्वका हानी होगा । भेद और अभाव इन दोनो नियमसे प्रतियोगी सापेक्ष होते है । अतः प्रतिपन्न होता कि, वे (भेद और अभाव) दृशिका धर्म नही है । दृशिका स्वरूपभी वे नही । स्वयंप्रकाश पदार्थ प्रतियोगिका अपेक्षा न करकेही सिद्ध होता, अतः उसका भेदभावत्व हो नही सकता । सुतरां उसरूपसे भेद वा अभाव सिद्ध नही हो सकते । एकका द्विरूप होता नही । एक लक्षण एक होता, भिन्न लक्षण भिन्न होता है, यह प्रसिद्ध है । एक दृशिका यदि भेद और अभाव इन दोरूप होवे तो कहना होगाकि–दृक, उन द्वय अभिन्न अथवा उन दो दृशि अभिन्न है । प्रथम पक्षमे दृशिका एकत्व रहेगा नहि, क्योकि वह द्वय-अभिन्न है, अन्तिम पक्षमे उन दोनोके परस्पर भेद रहेगा नही क्योकि वे एका-भिन्न (दृशि–अभिन्न) है । औरभी दृगभिन्न होनेसे उन दोनो रूपके स्वप्रभत्व कहना होगा, अतः पूर्वोक्त दोष अर्थात् प्रतियोगी अनपेक्ष उनके सिद्धि होनेसे भेदाभावत्व हानी होगा । अतः भेद और अभाव इन दो दृशिरूप है, इस पक्षभी सिद्ध होता नही । उल्लिखित विचारद्वारा इस सिद्धान्त प्राप्त हुवा कि–दृक्प्रतियोगिक (दृक् जिसका प्रतियोगी एतादृश) भेद और अभाव दृश्यमे रह नही सकता.

अभी द्रष्टादृश्यका भेद और परस्पराभाव विषयक कोई प्रमाणभी नही है, सो कहा जाता । चक्षु वा मन द्वारा वह अवगत हुवा जा नही सकता क्योकि दृशिस्वरूप, चक्षु और मनका अगोचर है । वहभी यदि प्रमाणसे मेय होते तो मात्रादिके अनवस्था होगा अतः वह अगोचर है अगोचरसे भेद वा अगोचरका अभाव, गोचरमे ज्ञात होना शक्य नही । दृशिका गोचरत्व होनेसे वह घटादिके तरह अदृक–होगा । घटज्ञान पटज्ञान इस प्रकार विशिष्टरूपका कदाचित् विषयत्त्व दृष्ट होनेसेभी केवलज्ञानका कभीभी विषयत्व दृष्ट होता नही । दृक्प्रतियोगिक भेद और अभावविषयमे दृकही प्रमाण होगा, ऐसा मी कहा नही जा सकता । दृकका ग्रहण विना तत्प्रतियोगिक भेद और अभावके ग्रहण–सम्भव नही । अपनेही अपना गोचर नही, "कर्मकर्तृविरोधात्" । दृशि स्वतः स्फुरित होनेसे स्वप्रतियोगिक भेद और अभावके प्रमाण अपनेही होगा, ऐसा कहना उचित नही । प्रतियोगी तथा प्रतियोगीयुक्त भेद और अभावज्ञान अपनेही होता है–ऐसा कहनेसे प्रष्टव्य यह है कि–युगपत् सम्पूर्णरूपसे होता है अथवा अंशरूपसे ? आद्य पक्ष संगत नही, क्योकी वह सावधिरूपसे और अवधिका प्रमाणरूपसे युगपत् सम्पूर्ण वर्तमान होनेको समर्थ होगा नही । प्रतियोगीरूपसे वर्तमानका तद्रूपसेही समाप्त होनेसे उसका प्रमाण पुनः हो नही सकेगा । द्वितीय पक्षभी असंगत है, क्योकि स्वप्रकाश-

ज्ञान सांश वा सावयव नही। स्वप्रकाश ज्ञानको सावयव (अवयव सहित) कहनेसे उस अवयव और अवयवी इन दोनो स्वप्रकाश होगा अथवा अन्यतर स्वप्रकाश होगा। इन दोनो पक्षही असमञ्जस है। उभय स्वप्रकाश होनेसे वे परस्पर अविषय होगा। यो स्वतः प्रकाश नही किन्तु अपरद्वारा प्रकाशित वही विषय कहलाता है। अतः स्वप्रकाश अवयव और स्वप्रकाश अवयवी परस्परका विषय न होनेसे अवयव अवयवीको जानेगा नहीं, अवयवीको भी अवयव प्रतीत होगा नही। इस प्रकार अवयव और अवयवी प्रतीत न होनेसे उसको सावयव कहा जावेगा नहीं, उसका सावयवत्व असिद्ध होगा। यदि कहा जावेकि–अवयव और अवयवी उभय स्वप्रकाश नही किन्तु एक स्वप्रकाश, अपर अस्वप्रकाश, तो उन दोनोंके अंशांशी-भाव (अवयव–अवयवी भाव) होगा नही। अस्वप्रकाशरूप घट, प्रकाशरूपज्ञानका अवयव होता नही। अतः स्वप्रकाशज्ञान अवयवसहित नही। अविषय होनेसे वह निरवयव निरंश निराकार होगा। जो सावयव साकार पदार्थ होता वह ज्ञानका विषय होता है, अधिक–देशका ज्ञान विना पदार्थोंके सावयवत्व निर्द्धारित होता नही। सीमाकी निर्देश विना पदार्थका सावयवत्व ज्ञात होता नही। सीमाकी निर्देश करनेकी लिये उसकी अधिक देश विषयीकृत होना आवश्यक है। अतः यो अविषय वह सावयव हो नही सकता, क्योकी उसका अधिक देश विषयीकृत होता नही। स्फुरणरूप होनेसे ज्ञान अननुभाव्य है। अतः ज्ञान सावयव नहीं किन्तु निरवयव है। ज्ञान–स्वरूपका अधिक देशका ज्ञान विना उसका सावयवत्व सिद्ध होगा नही। अतः ज्ञानस्वरूपका सावयवत्व सिद्धिके पहलेहीं ज्ञान विद्यमान है। इसीलिये ज्ञेय पदार्थोंके अधिक देशका प्रकाश, ज्ञानद्वारा होनेसेभी, ज्ञानस्वरूपका अधिकदेश उपपन्न नही, सुतरां ज्ञेयपदार्थके तरह ज्ञानका सीमा सम्भव नही है. अत वह सावयव नही।[१६] यदि ज्ञान सीमाबद्ध होता तो वह अपर पदार्थद्वारा सीमायुक्त होनेसे उक्त सीमाकी ज्ञान हो नही सकता था। उस सीमाको जाननेकी

---

(16) It is only possible to be aware of a limit to anything by knowing what is beyond the limit. No one could be aware of the end of a straight line unless he were aware of the empty space beyond the end. Hence, if knowledge itself has any absolute limit we could not be aware of the fact, for we could only know the limit by being aware of what is beyond the limit; and that would mean that knowledge has already passed beyond its supposed limit or in other words the limit is no limit.

(Stace's "The philosophy of Hegel")

लियेही सीमासहित सम्बद्ध अथच तदतीत होना आवश्यक है। ज्ञान तदतीत हुये विना कैसे ज्ञानका सीमा अवगत होवेगी? अतः ज्ञानका सीमा जाननेकी पहलेही ज्ञान तदतीत है, अतः सिद्ध है, इसलिये ज्ञानकी सीमा प्रसिद्ध हो नही सकती। परिच्छिन्नत्व प्रकाशित होता इसीसेही प्रतिपन्न होता कि परिछिन्नत्व प्रकाशगत नही।[१७] दृशिका सांशत्व होनेसे अनित्यत्वप्राप्ति और अदृकत्व प्रसंग होगा। सांशत्व अनित्यत्व और अदृकत्व ये नियत सहचररूपसे प्रसिद्ध है। अतः सिद्ध हुवा कि, दृशिस्वरूप एकांशसे भेदका वा अभावका प्रतियोगी होगा, और अपरांशसे उनके ज्ञान होगा, ऐसा हो नही सकता। भेद और अभावका दृकमाणत्व (दृक द्वारा ज्ञातत्व) संभव नही, इस विषयमे औरभी हेतु यह है कि–भेद और अभाव यदि दृकरूप प्रमाणद्वारा अवगत हुवा जावेगा तो वे दृक्-प्रतियोगिक होगा नही किन्तु अप्रतियोगिक वा अन्यप्रतियोगिक होगा। जो जिसमे प्रमाण होता वह तत्प्रतियोगिक होता नही, किन्तु अन्यप्रतियोगिक होता है। इस रीतीसे भेदविषयमे दृकरूप प्रमाण होनेसे सो दृक्प्रतियोगिक होगा नही।

औरभी वक्तव्य है–दृशिका अभाव दृश्यमे है यह अवगत होना शक्य नही, उपलब्धियोग्य पदार्थोके अनुपलब्धिसे उक्त योग्यपदार्थोके अभावज्ञान होते है, दृशिसे अन्य उपलब्धि नही है जिसका अभावसे (अनुपलब्धिसे) अभाव ज्ञात हुवा जावेगा। अतः दृशिका अभावज्ञान कहीपरभी हो नही सकता, क्योकि उसका (अभावज्ञानका) हेतु नही है, अर्थात् दृशिका अनुपलब्धिका अभाव होनेसे दृक्प्रतियोगिक अभावज्ञान संभव नही, यहांपर अभावज्ञानका कारणरूप प्रतियोगीस्मृति आदिकभी[१८] नही है, क्योकि दृशि अग्राह्य है। प्रमाणद्वारा दृकप्रतियोगिक अभावका ज्ञान हो नही सकता क्योकि दृशि अमेय, प्रमाणका अविषय है। 'यह यह नही' इस प्रकार प्रतियोगीका ग्रहण अभावज्ञानका निदान दृष्ट होता। धर्मि और प्रतियोगी द्वारा अविशेषित यदि अभावज्ञान होता तो अविशेषित होनेसे सर्वत्रही सर्वका अभावज्ञान होता था किंवा किसीकाभी कहींपरभी होता नही था। दृशिस्वरूप अमेय होनेसे वह प्रतियोगी होगा नही। प्रतियोगी आदिके अभावसे दृक्प्रतियोगिक अभाव ज्ञेय होगा नही। प्रमेय पदार्थही प्रतियोगिरूपसे अभाव-

---

(17) It is a flagrant self-contradiction that the finite should know its own finitude.

(Bradleys "Ethical studies")

(१८) भूतलमे घटाभावका ज्ञानस्थलमे घटका (अभावप्रतियोगिका) स्मरण अपेक्षित होता है। जिस आश्रयमे अभाव रहता उसका प्रत्यक्ष, जिसका अभावज्ञान उसका स्मरण और उस अभावज्ञान मानस (मतान्तरमे प्रत्यक्ष) होता है। 'गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनं, मानसं नास्तितज्ज्ञानं जायते अक्षऽनपेक्षनात्।

(मीमांसावार्तिक)

प्रमाणमे स्फुरित होता है। संदिग्ध भावकेही बुभूत्सा होनेसे अभावज्ञानके उदय हुइ होता । परन्तु दृशि अप्रमेय (स्वयंप्रभ) और असंदिग्धभावरूप होनेसे उसका, अभावप्रमाणमे स्फुरण और अभावज्ञानोदय संभव नही है। अतः दृकअभाव अप्रामाणिक है । प्रामाणिक–अभाव न होनेसेभी अप्रमेय अभाव होगा, सो कहना उचित नही । अप्रमेय यदि अस्वयंप्रभ हो तो उसका सिद्धि होगा, नही । पदार्थोंके सिद्धि त्रिविधरूपसे होता है, प्रमाणद्वारा अथवा दृशिरूप अनुभव द्वारा अथवा स्वतःसिद्धि । दृशिका अभाव यदि स्वतः सिद्ध माना जावे तो प्रतियोगी आदिके अभाव होनेका कारण दृशिका अभाव सिद्ध होगा नही। दृकका अभावज्ञान दृक्ही, सो कहा नहीजा सकता सप्रतियोगिक अभावका स्वप्रकाशज्ञानत्व सम्भव नही। सम्भव होनेसे अभावत्वका व्याहति होगा।[१९] अतःउक्त अप्रमेय अभाव स्वतः सिद्ध हो नही सकनेसे अवशेष (प्रकारन्तरकी अभाववशात्) उसका दृशिसिद्धत्व कहना होगा। परन्तु यह भी सम्भव नही, स्वाभावका साधक स्व हो नही सकता। अतः उक्त अभाव अस्वयंप्रभ अथच प्रमाणागोचर होनेसे उसका सिद्धि हो नही सकता। सुतरां दृश्यमे दृक्–अभाव है, इस विषयमे प्रमाण नही। दृक्दृश्यके इतरेतराभाव न हो तथापि उनके भेद होगा, ऐसा वचन संगत नही। इतरेतराभाव विना भेद होता नही, सो इतरेतराभाव दृकदृश्यके नही है [२०] अतः प्रामाणिक भेदाभावके अभाव होनेसे दृशिका अनन्तपना सिद्ध होता। अर्थात् दृशिका भेद और अभाव न होनेसे उसका देशतःकालतः और वस्तुतः अन्तराहितत्व प्रतिपन्न होता है। उक्त विचार द्वारा इस सिद्धान्त प्राप्त हुवा कि दृशिरूप चेतन अनन्त होनेसे जडपदार्थ ऊससे भिन्नरूपसे निर्वचन योग्य नही है।

चेतनाभिन्नरूपसेभी जडका निर्वचन सम्भव नही । चेतन परानपेक्षसिद्ध, जड परतः सिद्ध, अतः इनके अभेद सम्भव नही, ज्ञानका ऐक्य साधित भया, अतः दृश्य, दृशि–अभिन्न नही । जडका चेतनाभिन्नत्व होनेसे जडमे चेतनका अन्तर्भाव होगा अथवा चेतनमे जडका अन्तरभाव होगा। जड और स्वप्रकाशका अभेद होनेसे प्रकारान्तरका अभावसे परस्पर अन्तर्भाव कहना होगा अर्थात् दृकदृश्यका अभेद होनेसे दृश्यका दृकमात्रत्व होगा किंवा दृशिका दृश्यमात्रत्व होगा। परंतु सो सम्भव नही। यदि दृश्य, दृशि–अभिन्न होगा तो दृकही होगा, उसका दृश्यता होगा नही। यदि दृश्य–

---

१९ सप्रतियोगिकस्याभावस्य स्वप्रकाशज्ञानत्वासम्भवात्सम्भवे च अभावत्वव्याघात
(ज्ञानोत्तमकृत " इष्टसिद्धि विवरण—अमुद्रित)

२० अविषयत्वात् दृशो न भेदाभावधर्मिता नापि प्रतियोगिता।
(आनन्दानुभवकृत इष्टसिद्धि विवरण–अमुद्रित)

अभिन्न होगा, तो वह दृश्यही होगा, दृक नही । इसरीतिसे दृश्य अदृश्य होगा । अतः दृक् दृश्यका अभेद असंभव है ।

शंकाः—'शुक्लघट' इस स्थलमे शुक्ल और घटका जैसा विशेष्यविशेषण भाव होता ऐसे "घटदृष्ट" स्थलमेभी विशेष्यविशेषण भाव होनेसे इस स्थलमेभी अवश्य धर्मधर्मित्व कहना होगा । इस धर्मधर्मिभाव अत्यन्त भेदस्थलमे हो नही सकता । अतः दृक्दृश्यका अभेद मानना होगा ।

उत्तरः—दृक् और दृश्यका धर्मधर्मिज्ञान हो नही सकता । घट और रूप जैसा एक ज्ञानका गम्य है तैसे दृक और दृश्य एकज्ञानगम्य नही है । जिनके एकज्ञान गम्यता होते उनके धर्मधर्मिभाव दृष्ट होता । एकज्ञानागम्य होनेसेभी यदि धर्मधर्मि-भाव माना जावे तो अतिप्रसंग दोष होगा, हिमवत् और विन्धकामी धर्मधर्मिभाव हो जावेगा क्योकि एकज्ञानागम्यत्व सम है । एक जो दृशि उसका दृश्यधर्मत्व-रूपसे दृश्यत्व और उस दृश्यका दृकत्व—यह एक कालमे सम्पूर्णरूपसे हो नही सकता । दृक और दृश्यका यदि धर्मधर्मिभाव होगा तो एकज्ञानगम्यत्वभी अव-श्यही होगा । अतः एक जो दृशि वह सम्पूर्णरूपसे दृश्यका धर्मरूपसे अथवा दृश्यका धर्मिरूपसे दृश्शत्व तथा अपर दृक् न रहनेसे तदानीं ही उसका (धर्मधर्मिभावका वा दृश्यका) दृकत्व हो जावेगा । परन्तु यह अयुक्त है, क्योकि युगपत् सम्पूर्णरूपसे दृश्यत्व और दृकत्व परस्पर विरुद्ध है । यदि कहोगे कि, एक अंशसे दृशिका दृश्यधर्मता अथवा दृश्यधर्मिता होनेसे दृश्यत्व और अंशान्तरसे दृकत्व होगा; तो वक्तव्य यह है कि, सो समीचीन नही, क्योकि दृशि अनंश हैं तथा उस दृशिकाजो दृश्यांश वह अदृक हो जावेगा । दृश्यका धर्मरूपसे अथवा दृश्यका धर्मिरूपसे दृश्यरूपसे प्रविष्ट जो भाग वह दृश्य होनेसेही अदृक होगा । अदृक होनेसे दृकदृश्यके धर्मधर्मित्व होगा नही किन्तु दृश्य दृश्यकेही धर्मधर्मित्व होगा । एक दृशिका दृकत्व और दृश्यत्व इन दो युगपत वा क्रमिक वा अंशद्वारा हो नही सकता । औरभी विचारणीय है कि दृश्य और दृशिका जो धर्मधर्मिभाव वह स्वप्रकाश है वा दृश्य है ? यदि स्वप्रकाश होगा तो दृकअभिन्न होगा, वह धर्मधर्मिभावही होगा नही । औरभी दृकदृश्यके जो धर्मधर्मिभाव है वह दृक और दृश्य इन दोनोके धर्म है ऐसा कहना होगा । परन्तु सो सिद्ध होगा नही, क्योकि धर्मधर्मिभाव स्वयंप्रकाश होनेसे उसका (वास्तव) सम्बन्ध, दृश्यका साथ होगा नही । यदि धर्मधर्मिभाव दृश्य होगा तो दृशिको साथ सम्बन्ध होगा नही अर्थात् वह दृकका धर्म होगा नही, क्योकि दृश्यका, स्वयंप्रकाश दृकके साथ सम्बन्ध होगा नही । ज्ञेयपदार्थ यदि तत्वतः चिद्धर्म होगा तो चेतनकाभी वेद्यत्व प्रसंग होगा । दृकका साथ दृश्यका धर्मधर्मिभाव यदि मिथ्यासम्बन्धसे होगा तो उस सम्बन्धप्रयुक्त धर्मधर्मिभावभी मिथ्या होगा । अतः द्रष्टादृश्यके धर्मधर्मिभाव संगत नही है । सुतरां दृकदृश्यका, जड चेतनका अभेद नही । दृकदृश्यके अभेद होनेसे

सर्व व्यवहारका लोप हो जावेगा । अतः प्रतिपन्न हुवा कि–जडप्रपञ्च चेतनाभिन्न-रूपसे निर्वचनीय नही है ।

चेतनसे भिन्नाभिन्न उभयरूपसेभी जडपदार्थ निर्वचनीय नहीं है । एकका एकत्र एक रूपसे भेद और उसका अभाव (अभेद) विरुद्ध है ! जो एक वह नाना ऐसा प्रमा होता नही । जो अनेक वह एक ऐसा प्रमितिभी नही है । भेदज्ञानका अभेदार्थत्व अयुक्त है और अभेदज्ञानका भेदार्थत्व अयुक्त है । अभेदज्ञानका विषय भेदज्ञानका विषयसे अन्य होनेसे भिन्न द्वयके अभेद सिद्ध होता नही । अतः एकत्र भेदाभेद सम्भव नही है । दृश्य कभीभी द्रष्टरूप नही, दृशि भी दृश्यरूप नही । तृतीयरुप हो नही सकता । अतः दृशिका रूपद्वय हो नही सकता । दृश्यकाभी ऐसा है सुतरां दृशि वा दृश्यका रूपद्वयके अभाव होनेसे उनके परस्पर भेदाभेद हो नही सकता* । अतः चेतनसे भिन्नाभिन्न उभयरूपसे जडका निर्वचन होता नही ।

उल्लिखित विचार द्वारा सिद्ध हुवाकि–पदार्थ द्विविध–चेतन (ज्ञान) और जड (ज्ञेय) । इनमे चेतन स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश अनन्त स्वरूप, जडप्रपञ्च अनिर्वचनीय है । अद्वैत वेदान्तशास्त्रमे अनिर्वचनीय अर्थ वचनका अयोग्य नही किन्तु दुर्निरूपत्व है । युक्तिद्वारा निश्चय करके भिन्न वा अभिन्न वा भिन्नाभिन्नत्व प्रकारसे निरूपणासहिष्णु होनेसे वह अनिर्वचनीय है । अनिवर्चनीय यह वस्तुस्वभाव है, पुरुष दोष नही.[२१] उल्लिखित विचारद्वारा ज्ञान और ज्ञेय, द्रष्टा और दृश्य–इसप्रकार पदार्थ स्वीकृत होनेसेभी द्वैत सिद्ध नही होता । साक्षीज्ञानका उत्पत्तिनाश न रहनेसे उसका भेद नही है । ज्ञेयसेभी भेद होगा नही क्योकि ज्ञेयपदार्थ ज्ञानका अधीन है. जो जिसका अधीन वह उस सत्ताका भेदक वा परिच्छेदक होता नही । इसरीतिसे अद्वैतत्व सिद्ध होता । इस अद्वैत, कार्यगर्भित कारणैक्य (विशिष्टाद्वैत) नही है, क्योकि ज्ञेय पदार्थ ज्ञानका परिणामरूप नही । सर्वावधि साक्षीरूप होनेसे ज्ञानस्वरूप चेतन निर्विकार है । परिणाम नियमसे परिणामीका आश्रित होता है । अविकारी चैतन्य (परिणामिरूपसे) विकारका आश्रय नही हो सकता । चैतन्य–परिणामका जडत्व उपपन्न नही । स्वरूपसे अप्रच्युत स्वभावका सर्वप्रकार तद्विपरीत कार्याकार परिणाम संभव नही है । जडपदार्थ चेतनका (वास्तव) धर्मभी नही, कहा गया; अथच ज्ञेय पदार्थ, सत्ता और भानके लिये ज्ञानका अधीन होनेसे तथा उस ज्ञान क्रियारूप न होनेके कारण उसका निराश्रयत्व सिद्ध होनेसे ज्ञानका अद्वैतत्व सिद्ध होता ।[२२]

---

* चेतन निरंश होनसे एकांशसे भेद और अपरांशसे अभेद होगा नाही । संपूर्ण रूपसे भी नही । जो चेतनसे संपूर्ण रूपसे अभिन्न है वह यदि चेतनसे भिन्न होगा तो चेतनभी चेतनसे संपूर्ण रूपसे अभिन्न होनेसे वह भी आपनसे भिन्न होगा । परंतु ऐसा होना शक्य नहीं । स्वतःहि स्वसे भिन्न होता नही, क्योंकी एकही निरंशका अवधिस्वरूपता और अवधिमत्-स्वरूपता हो नही सकता । और भी जिस रूपसे अभेद होगा ऊस रूपसे यदि भेद होगा तो भेद बुद्धि और अभेद बुद्धि ये एक विषयक होगा अर्थात् उसकी भेदस्वरूपता आवेगी नही.

(२१) नहिप्रमातॄणामसामर्थ्यादनिर्वचनमपि तु विषयस्वाभाव्यात् ।

(अद्वैतसिद्धिगुरूचन्द्रिका–अमुद्रित)

(२२) यहांपरसत्ता और ज्ञानका एकता प्रदर्शन आवश्यक है । विस्तारभयसे यह प्रतिपादित हुवा नही । सत्स्वरूपसम्बन्धी मतभेद है. किसीके मतमे (सांख्यपातञ्जल) सत् भिन्न

अभी यदि प्रतिपादित होवेकि, ज्ञेयप्रपञ्च सत्य नही है, तो (ज्ञेय और उसका वैशिष्ट्य मिथ्या होनेसे) उस अद्वैतत्वका केवलत्व सिद्ध होगा। ज्ञेयपदार्थ अनिर्वचनीय है यह पहलेही प्रतिपादित भया है। ऐसा अनिर्वचनीय पदार्थकोही केवलाद्वैत वेदान्तशास्त्रमे मिथ्या कहा जाता है। यहांपर यह स्मरण राखना चाहिये कि, उक्तशास्त्रमे ज्ञानका तरफसे जडपदार्थो के विचार कीया जाता है। इस दृष्टिसे देखनेसे प्रतिपन्न होगा कि जडप्रपञ्च सत्ता और भानके लिये स्वप्रकाशज्ञानका सापेक्ष है। इसप्रकार परतंत्रताको उक्तवादीयोने मिथ्या कहते है। अतः मिथ्या अर्थ परतंत्र है [२३]परतन्त्र अर्थ जो असत नहीअथच ओ स्वतः सिद्ध (सत्वासत्य) भी नही [२४] जिसका सत्ता अपर सत्तासे सत्तावान, जिसका भान अपर भानसे भासित अथच उस अपर सत्ताका समसत्ताक जिसका सत्ता नही। अतः अधिक सत्ताक [२५]अधिष्ठानमे न्यूनसत्ताक प्रतिभासही परतन्त्र है, वही मिथ्या होता। ऐसा पदार्थ ही अनिर्वचनीय होता है। जहांजहां मिथ्यात्व वहांपर सर्वत्रही ऐसा होते है। अभी भ्रान्तिस्थलका दृष्टान्त लेकर उक्त अर्थका स्पष्टीकरण कीया जाता है। जिस वस्तु जो नही वह तदीय धर्मयुक्तरूपसे भासमानता स्थलमें ऐसा न्यूनसत्ताक (अनिर्वचनीय) प्रतिभास होता है।

दृष्टान्त स्वरूप—कागजका टुकरा जब रेशमरूपसे अपरोक्षगोचर होता तब उस रेशम असत नही, क्योकि उसका अपरोक्ष प्रतीति होता है। वह यदि असत् होता तो प्रत्यक्षद्वारा ' रेशम ' इसप्रकार विशेषप्रतिभासका अभाव हो जाता था। कागजज्ञानका अनन्तर उक्त रेशमका बाध (यह रेशम नही इस प्रकार) उपलब्ध होता है।

भिन्न वस्तुस्वरूप है, अपरमतमे (न्यायवैशेषिक) सत्ता अनुगत पराजातीरूपधर्म, मीमांसक लोग सतको—ज्ञानका सम्बन्धीत्व (प्रभाकर) वा कालका सम्बन्धीत्व (भट्ट) कहते, इसप्रकार मतभेदसे सत्व—अर्थक्रियाकारिरूप (बौद्ध) उत्पादव्ययध्रौव्ययोगित्व (जैन), वर्तमानत्व, अस्तित्वरूपधर्म, प्रमाणविषयत्व, सदुपलम्भप्रमाणगोचरत्व, व्यपदेशाविषयत्व है। वेदान्तमतमे सत् अखण्ड ज्ञानस्वरूप है। वह भिन्न भिन्न वस्तु स्वरूप वा धर्मरूप नही किन्तु अनगत धर्मिरूपसे प्रतिभात होता है।

(23) If we are to speak of phenomenal truth it is essential to remember that what is phenomenally true is not really true, but really false.

(Mc. Taggart's " The nature of existence " Vol II)

(२४) सदसन्निषेधोनानुपपन्न अनिर्वाच्यकोटेरन्यस्याः सम्भवात्।

(भामतीतिलक-अमुद्रित)

(२५) प्रातीतिकव्यावहारिकपारमार्थिकसत्तानां पूर्वपूर्वापेक्षया उत्तरोत्तरस्याधिक्यं पल्लवाविद्यावच्छिन्नं चैतन्यम् आद्या मूलाविद्यावच्छिन्नं द्वितीया-शुद्धं तत् तृतीया। अथवा अज्ञानविषयतावच्छेदकत्वं द्वितीयाशुद्धचिदन्यत्वेसति तदभाव आद्या। (अद्वैतचंद्रिकाअद्वैतसिद्धिव्याख्या-अमुद्रित)

उस प्रतिभास यदि असत् होता तो उक्तबाध होता नही था। प्रसक्तकाही बाध होता है, असत् प्रसक्त न हो सकनेसे उसका निषेध-सम्भव नही है । अतः बोध और बाध द्वारा अवगत हुया जाता कि उक्त रेशम असत नही। वह तद्देशस्थ सतभी नही, क्योकि पश्चात् वह बाधित होता है । उस बाधप्रत्यय किन्तु उक्त रेशम की प्रतीतिकीतरह बाधित होता नही, अतः रेशमका अभाव वस्तुतः है। वह सदसत् उभयरूपभी नही। विरोध होनेसे इस पक्ष असंभव है। वह देशान्तरस्थ सत् भी नही, क्योकि देशान्तरीय पदार्थका अपरोक्षविषयत्व उपपन्न नही होता। विशेषण–सन्निकर्षाभाव होनेसे विशिष्ट बुद्धि दृष्ट होता नही। कागजमे रेशम पहले अननुभूत होनेसे वहांपर ज्ञानका सन्निकर्षत्व हो नही सकता। यदि कहा जावे कि उक्तज्ञान कागजविषयक है, रेशमविषयक नही तो वक्तव्य, ऐसा वचन संगत नही, क्योकि अन्याकार ज्ञान अन्यालम्बन होता नही, यह ज्ञान-विरुद्ध है। असत् वैशिष्ट्य का अपरोक्ष प्रतीति उपपन्न नही है। इसस्थलगे यो अपरोक्षज्ञानका विषय है उसका देशान्तर–अस्तित्वमे प्रमाण नही है। वह रेशमका स्मृतिभि नही क्योकि अपरोक्ष होता है और उस तरफ प्रवृत्तिभि होता है। वह रेशम, ज्ञानात्मकभी नही। ज्ञानका रेशमत्वादि विशेष नही, है,उस रेशम बाहिर प्रतीत होता है। उक्त रेशमज्ञान निर्विषयकभी नही, क्योकि निरालम्बन ज्ञानका उदय दृष्ट होता नही। ऐसा होनेसे उसके प्रति प्रवृत्तिभि उपपन्न नही होता। अवशेष सद्भिन्न, असद्भिन्न, सदसद्भिन्न अनिर्वचनीय (सदसद विलक्षण) पदार्थका उत्पत्ति और प्रतीति मानना-होगा[२६]. उक्त रेशमका असत्त्व किंवा अधिष्ठानमे सत्त्व अथवा देशान्तरमे सत्त्व उपपन्न नही होनेसे कागजमे उक्तरेशम उत्पन्न होता है ऐसा स्वीकार करने पड़ता [२७]वह तत्कालीन तद्देशमे उत्पन्न प्रातीतिक पदार्थ है । भ्रमस्थलमे भ्रमकालमे उस बाध्य पदार्थका उत्पत्ति स्वीकार करना होगा क्योकी वह प्रातीतिक होनेसे भ्रमका पहले रहता नही। उत्पत्ति स्वीकार न करनेसे अधिष्ठानका साथ उक्त प्रातीतिक पदार्थका तादात्म्य हो नही सकेगा। “ यह रेशम है ” इस प्रकार भान होनेसे प्रतिभासानुरूप मिथ्या रेशम और उसकी तादात्म्य (अयथार्थ) पुरोवर्ती

---

(२६) ननु एकस्य सदसदात्मकत्ववत् तद्विलक्षणमपि विरुद्धं इति चेत्, न, विरुद्धयोरपि मृषातादात्म्योपपत्तेः। ननु सदसतोरेव मृषा तादात्म्यं किं न स्यादिति चेत्, न, मृषाशब्दार्थस्यैवानिर्वचनीयत्वात् । (नृसिंहाश्रमविरचित सक्षेप शारीरिक तत्वबोधिनी–अमुद्रित)

(27) A sensible appearance is a reality, but it is not a physical reality, because it does not obey the laws of physics; and it is not a mental reality in the sense of a state of mind nor is it any quality of a mental act.

(Reality–Broad–Encyclopaedia of Religion and Ethics vol x).

(कागजरूप) अधिष्ठानमे भानना होगा । अर्थगत वैशिष्टय न रहनेसे बुद्धिगत वशिष्टय सम्भव नही है । उक्त स्थलमे प्रातिभासिक रेसममे जैसा कागजगत इदं-ताकासंसर्ग होता है तैसाही कागजगत जो सत्ता, उसका भी संसर्ग उसमे प्रतीत होता है, पृथकरूपसे उसका कोइ सत्ताही रहता नही। अतः सिद्ध हुवा कि–अपरोक्ष प्रतीति और परवर्तीकालीन बाध इन दोनो अनुभवका उपपत्ति देनेकी लिये तदानीं प्रातिभासिक सत्तावान रेशमकी उत्पत्ति, कागजरूप व्यवहारिक सत्तावान अधिष्ठानमे होता है ऐसा मानने पडेगा। "यहरेशम है' ऐसा प्रत्यय की अनुरोधसे बाधकज्ञान–निरसन–योग्य (बाधक ज्ञानसे जिसका निवृत्ति होता ऐसा) प्रतिभासमानकालीन मिथ्या रेशम अंगीकार करना होगा। "यह रेशम नही है" इस प्रकार बाधक ज्ञान,– अधिष्ठानमे रेशमकी अभाव–प्रतियोगित्वरूप-मिथ्यात्वको विषय करता है। अभावविशिष्ट ज्ञान जव कोइभी पदार्थका निवर्तक होता वहांपर निवर्त्यका मिथ्यात्वही प्रयोजक होता है, अन्यथातत्कालमे तदभाव-विशिष्ट प्रमा असम्भव है। अतः रेशमकी ख्याति (प्रतीति) और बाध इन दोनोसे अवगत हुवा जाता कि–जो सत् नही वह भी प्रतीत होता है[२८] उक्त दृष्टान्तानुसार सर्व भ्रान्तिस्थल समझ लेना।

उल्लिखित विचारद्वारा मिथ्या पदार्थके परिचय प्राप्त भया। अभी किस हेतुसे कोइभी पदार्थको मिथ्या कहा जाता उसका निरूपण कीया जाता है। कोइभी पदार्थका मिथ्यात्व होनेका हेतु यह है कि वह असत् नही[२९] अथच स्वतंत्र सत्तावान (सत्य) भी नहीं, वह अपर सत्तासे सत्तावान अथच उस अपर सत्ताका समसत्ताक वह नही[३०]

---

२८ यस्मात् भ्रान्तित्वव्यवहारः सदसद्ज्ञानयोरनुपपन्नो, यतश्च पक्षान्तरेषु अनुभव-विरोधः, यतश्च ज्ञानद्वय--पारोक्ष्य—स्मृतित्व—स्मरणाभिमानप्रमोषः, तद्धेतुरविवेकः तन्निमित्तप्रवृत्तयोः इति अप्रतिपन्नमपूर्वं बहुकल्पनीयं अख्यातौ; अन्यथाख्यातौ च अन्यत्र प्रतिपन्नस्य अन्यत्र सत्त्वं, इन्द्रियस्य च जन्मान्तरानुभूतदेशकालव्यवहितार्थग्राहित्वं, दोषस्य च तथाविधा-दृष्टसामर्थ्यं, संसर्गस्य च शून्यस्य प्रत्यक्षता इति प्रमाणविरुद्धं बहु कल्पनीयं; अतः सर्वदोष-परिहाराय यथाप्रतिपन्नस्य मिथ्यात्वं नामकः स्वभावो "नास्ति रजतं मिथ्यैव रजतमभात" इत्यनुभवसिद्धः समाश्रयनीयो, अविद्योपादानकल्पनायाश्च अन्वयव्यतिरेकसिद्धत्वात्। सत्यस्य वस्तुनो मिथ्यावस्तुसंभेदावभासमानो मायामिथ्याऽनिर्वचनीयख्यातिरध्यास एवायम्

(पञ्चपादिकाविवरण).

(29) They must exist in order to be false.

(Bosanguaet's " Essentials of logic ")

(३० , यद्यपि वेदान्तमतमे चेतनस्वरूपही सर्वका सत्ता है अतः सत्वस्वरूपमे भेद नही तथापि तत् तत् अवच्छिन्न चैतन्य तत् तत् सत्व होनेसे अवच्छेदक स्वरूपोके वैषम्यसे तत् तत् सत्त्व भी विलक्षण है, सुतरां सत्ववैचित्र्य अनुपपन्न नही है।

वह, अधिष्ठान (उक्त दृष्टान्तस्थलमे कागजावच्छिन्न चेतन, स्थुलतः कहा जाता–कागज) से भिन्न वा अभिन्न वा भिन्नाभिन्न रूपसे निर्वचनीय नही है, इस प्रकारसे सर्वत्र मिथ्या प्रतिभासस्थलमे इस लक्षणकी (विषमसत्ताक) समन्वय होता। प्रसिद्ध स्वप्नदृश्यभी साक्षी चेतनका सत्तासे सत्तावान, उसका भानसे भासित अथच विषमसत्ताक (प्रातीतिक); अतः अनिर्वचनीय (साक्षीचेतनसे भिन्न वा अभिन्न वा भिन्नाभिन्नरूपसे निरूपणार्ह नही) होनसे मिथ्या है[३१]

अभी केवलाद्वैतसिद्धान्तप्रतिष्ठाकी प्रकार संक्षेपसे कहा जाता है। पदार्थ द्विविध–ज्ञान और ज्ञेय। ऐसा विभागका समीचीनता प्रतिपन्न होता है, क्योकि इससे न्यून वा अधिक चिन्तन नही कीया जा सकता। इससे न्यून होनेसे जगतका अप्रसिद्धि होती थी। अधिकभी नही। अशेष पदार्थ इसीकेही अन्तर्गत होगा, एतद्-तिरिक्त हो नही सकता, अन्यथा तुच्छता होगा। ज्ञान स्वप्रकाश होनेसे किसीकाभी आश्रित नही है, अतः ज्ञानही ज्ञेयसम्बन्धसे ज्ञातारूपसे उपचरित होता है। नित्य उपलब्धिमात्रही उपलब्धा है, अन्य उपलब्धी, अन्य उपलब्धा, ऐसा नही है। वेदान्तशास्त्रमे ज्ञानका तरफसे ज्ञेयका विचार कीया जाता है, क्योकी ज्ञानही ज्ञेयका सिद्धिप्रद है, ज्ञेयपदार्थ स्वतःसिद्धज्ञानका अधीन, उसका साथ तादात्म्य प्राप्त है। ज्ञेयको ज्ञान-व्यत्तिरिक्तरूपसे विचार करनेसे उनको स्वतत्र कहना होगा अथवा ज्ञान स्वस्वरूप परित्याग करके सर्वथा ज्ञेयरूपसे परिणत भया, ऐसा कहना होगा। परन्तु इन दोनो पक्षही असंगत है। अतः ज्ञानका तरफसे ज्ञेयका विचार करना होगा। यही वेदान्तपद्धति है। स्वतः-सिद्ध स्वप्रकाश ज्ञानका तरफसे ज्ञेयको विचार करनेसे ज्ञेय को सत् नही कह सकते क्योकि सत् स्वतः सिद्ध स्वप्रकाश है। स्वप्रकाश जैसा भातिभातिरूपसे अनुगत है[३२] तैसा सत्भी सतसतरूपसे प्रतिभात है। सत् भिन्न भिन्न वस्तु स्वरूप वा वस्तुधर्म नही है, सतको भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप कहना संगत नही, क्योकि घटादि वस्तुके परस्पर विलक्षणता होनेसे सन घट सन पट इत्यादि रूपसे एकाकार बुद्धि हो नही सकता। और भी सत्व और असत्व, वस्तुका स्वरूप होनेसे, सर्वदा सत्वासत्व हो जाता था, व्यवहार अव्यवस्थ होता था। सत, वस्तुका धर्मभी नही। सत्व और असत्व यदि वस्तुका धर्म होता तो असत्तदशा-

---

३१ (क) एवं च स्वप्नस्याप्याधिष्ठानभूतेन पारमार्थिकेन साक्षिणा विषमया मिथ्यात्वरूपया सत्तया समन्वयात् लक्षणानुगतिः लक्षणे सत्ताशब्देन नारत्वादिवत् उत्कर्षविशेषात्मकाः केचनाखण्डोपाधिभूता विवक्षितः। (ब्रह्मविद्याभरणं)

(ख) सतः स्फुरतश्चानिर्वचनीयमन्यथात्वमध्यासः। (सिद्धान्तदीप–अमुद्रित)

(३२) अनुभवः सर्वत्रैक एव भवितुमर्हति स्वतः सर्वत्रैकरूपत्वेन अवभासनात् आकाशगोत्वादिवत्। (पञ्चपादिकातात्पर्यद्योतनी–अमुद्रित).

मेभी वस्तुका अनुवृत्ति हो जाता था, क्योकी धर्मिविना धर्म रह नही सकता। औरभी धर्म, व्यावृत्त होता है। अतः वह (धर्म) अनुवृत्त व्यवहारमे हेतु हो नही सकता। जाति आदि पदार्थोंमे जाति नही रहता। अथच उन जाति आदि पदार्थोंमेभी सद्व्यवहार होनेसे सत् जातिरूप धर्म नहीं है।[33] अनुगत एकाकार बुद्धिका एकरूप सम्बन्धविषयत्वही कहना उचित है। अतः भावाभाव सर्व पदार्थोंके साथ सम्बद्ध सत् अनुगत धर्मिरूप है। "मृत्घट" स्थलकी तरह सर्व ज्ञेयपदार्थ उसका साथ (अयथार्थ) तादात्म्य प्राप्त होकर सनघट सनपट रूपसे प्रतिभात हो रहे है।[34] इस सिद्धान्तानुसार ज्ञेयप्रपञ्च सत हो नही सकता। सर्वत्र अनुगत सत्बुद्धिगोचर सत्व्यक्ति एक होनेसे विभक्त जडप्रश्चका सद्रूपत्व अयुक्त है। अतः (प्रकारान्तरकी अभावसे) वह असत् वा मिथ्या होगा। वह असत् नही। शशशृंग कूर्मरोम इत्यादि असत्विषयक शब्दज्ञानानुपाती वस्तु-शून्य विकल्पात्मकज्ञान वा ज्ञानाभास होनेसेभी वे ज्ञेयरूपसे अपरोक्षगोचर होता नही। असत्का साथ असत्का ऐसा ज्ञातृज्ञेयसम्बन्ध (द्विनिष्ठ) होता नही। अवशेष जड प्रपञ्चको मिथ्या कहना होगा (क्योकी वह सत्भिन्न चित्भिन्न)। एककाही परिणामविना अन्यथाभाव होनेसे उस अन्यथाभाव मिथ्या है। और भी पूर्वोक्त लक्षणानुसारभी जड प्रपञ्चको मिथ्या कहना होगा। स्वप्नदृश्य वा भ्रान्ति-दृश्य मिथ्या है, क्योकि वे व्यावहारिक अधिष्ठान सत्ताका वा साक्षीचेतनका सत्तासे सत्तावान् होकर न्यूनसत्ताक (प्रातीतिक) है। कागचमे रेशम–भ्रान्ति-स्थलमे रेशम जैसा स्वव्यतिरिक्त कागज–स्वभाव–इंदरूपद्वारा अनुगत होकर प्रति-भात होता है, तैसा व्यवहारिक प्रपञ्चभी पारमार्थिक चेतनका सत्तासे सत्तावान्, उसीकाही भानसे भासित अथच न्यूनसत्ताक (व्यवहारिक) है। ऐसा पदार्थही अनिर्वचनीय होता है। अतः स्वप्रकाश पारमार्थिक अधिष्ठानमे अनिवर्च-

---

(३३) सत्ताचन द्रव्यगुणकर्मवृत्तिरेका प्रत्यक्षसिद्धा जातिः। धर्मादीनामतीन्द्रियत्वेन तत्र प्रत्यक्षायोगात् जात्यादावपि सद्व्यवहाराच्च। ... ... सामान्याविशेषसमवायाः निःसामान्या इत्यंगीकारात् सत्तासामान्यसंसर्गासम्भवात् तेषाम् अभावत्वप्रसंगः। (श्री. रघुनाथ विरचित पदार्थतत्त्वनिरूपण).

It is not itself a generic, but a transcendental notion. Wider than all, even the widest and highest genera, it is not itself a genus. A genus is determinable into its species by the addition of differences which lie outside the concept of the genus itself; being, as we have seen, is not in this way determinable into its modes.

(Coffey's "Ontololy ' or the theory Being").

(34.) Being and reality are, in brief, one thing with sentience.
(Bradley's appearance and Reality)

नीय व्यवहारिक सत्तावान जडप्रपञ्चका प्रतिभास सत्य नही है[३५] स्वप्न और जागृतका मिथ्यात्व अविशेष होनेसेभी अवान्तर वैलक्षण्यके कारण अर्थक्रिया-सामर्थ्यरूप विशेष उपपन्न होता। मिथ्या भ्रान्तिदृश्यसे किंवा मिथ्यास्वप्नदृश्यसे व्यवहारिक पदार्थोंके वैषम्य, स्वीकृत होनेसे सत्यत्वापात होगा, ऐसा कहना उचित नही है। परमतके सर्व पदार्थोंके सत्य होनेसेभी जैसा सुखादिके अज्ञात सत्त्वराहित्य (घटपटादि पदार्थोंके तरह अपना सुखदुःख आदि पदार्थ अज्ञातावस्थामे वर्तमान रहते नही) और अनन्य वेद्यत्व इत्यादि वैषम्य है, तद्वत् मिथ्यात्व होनेसेभी अवान्तर भेद उपपन्न होता है। मिथ्यात्व अविशेष होनेसेभी व्यवहारिक प्रातीतिकत्व भेदसे स्वप्न और जाग्रतका विशेष होनेसे जाग्रतकी स्थायित्व सिद्ध होता है। मिथ्यात्वका अविशेष होनेसेभी व्यवहारिकत्व और प्रातीतिकत्वरूपसे अवान्तर विशेष रहनेसे प्रपञ्चका सर्वसम्मत सत्यमिथ्यात्वविभाग सम्भव है*। सर्व दृश्यके मिथ्यात्वनिश्चयकी पहलेही प्रातिभासिक पदार्थोंके मिथ्यात्व निश्चित होता है। अतः तद्दृष्टान्तानुसार व्यवहारिक प्रपञ्चका मिथ्यात्व अवगत हुवा जाता है। यदि प्रातीतिक (मिथ्या) पदार्थोंके ज्ञान नही होते तो व्यवहारिक (प्रसिद्ध सत्य) प्रपञ्चका मिथ्यात्व समझा नही जाता था। अतः न्यूनसत्ताक अनिर्वचनीय होनेसे जड पदार्थ मिथ्या है। पारमार्थिक (" स्वान्यूनसत्ताकपरिच्छेदवद्भिन्न ") अद्वैत, अवास्तव द्वैत। द्वैतका वास्तवत्व न होनेसे अद्वैतत्व सिद्ध होता है।

इस अवास्तव अनिर्वचनीय द्वैतप्रपञ्चको दृष्टिभेदसे " अजात " कहा जाता है। परिदृश्यमान जडप्रपञ्चका मूल स्वप्रकाशतत्वका बोधसहित जगतदृष्टिसे जगतका स्वरूप विचार करनेसे वह अनिर्वचनीय है; अपर-दृष्टिसे वह अजातरूपसे वर्णित होता है। वहिःदेशस्थ अन्धकार विस्मृत न होकर कल्पनाबलसे सूर्यलोकमे अवस्थितिपूर्वक दृष्टिक्षेप करनेसे जैसा अन्धकारकी अनस्तित्व कहा जा सकता है, ऐसा जगतका बोधसहित कल्पनाबलसे तत्त्वमे स्थित होकर उस एकरस अखंड परिपूर्ण स्वप्रकाश तत्वदृष्टिसे विश्वप्रपञ्चका स्वरूप विवेचित होनेसे स्वरूपतः उसका त्रैकालिक अत्यन्ताभाव प्रतिपन्न होता है। ज्ञेय प्रपञ्चका मिथ्यात्व प्रतिपादित होनेसे वह जिसका सत्तासे सत्तावान जिसका भानसें भासित उसस्वप्रकाश अधिष्ठानका सत्यत्व और अधिष्ठानातिरिक्त सत्यपदार्थका परिशेष न रहनेसे उसका त्रिविधपरिच्छेदराहित्यरूप अद्वैतत्व-सिद्ध होता है।[३६].

---

(३५) मिथ्यात्व प्रतिपादनकी अधिक युक्ति विस्तारभयसे दीया नही गया। इसी हेतुसे अज्ञान और आध्यासिक तादात्म्य विषयक विचार ग्रथित नही है।

* प्रातिभासिक अपेक्षासे व्यवहारिक पदार्थोंके विलक्षण सत्ता गृहीत होनेसे उसको अपेक्षिक बोधसे सत्य कहा जाता। प्रातिभासिक पदार्थके अस्तित्व रहनेसेहि व्यवहारकालमे भ्रम–प्रमा विभागकी उच्छेद होती नही.

(३६) तात्विकद्वैतविधुरंसद्वस्तु अद्वैतं. (वेदान्तकौमुदी·-अमुद्रित)

आ. भ. प्रस, पुणं.

